अध्याय को ज्ञान की पद्धति से धारण किया जाय तो निष्कर्ष रूप में भक्तियोग का बोध हो जायगा। तेरहवें अध्याय में स्पष्ट किया है कि विनम्रभाव के द्वारा ज्ञान को विकसित करने मे भवबन्धन से मुक्ति हो सकती है। यह भी वर्णन हुआ है कि जीव इस संसार में गुणों के संग के कारण बद्ध है। अब इस अध्याय में, श्रीभगवान् बताते हैं कि गुण वस्तुतः क्या हैं? किस प्रकार कार्य करते हैं? कैसे बन्धनकारी होते हैं? और इनसे मुक्ति का क्या साधन है? श्रीभगवान् ने इस अध्याय में वर्णित ज्ञान को इससे पूर्व के अध्यायों में कहे ज्ञान से उत्तम कहा है। जिस ज्ञान को हृदयंगम करके मुनिजन संसिद्धि लाभ कर वैकुण्ठ-जगत् में प्रविष्ट हो जाते हैं, श्रीभगवान् उसी ज्ञान को अधिक स्पष्टरूप से कह रहे हैं। यह ज्ञान अब तक वर्णित ज्ञान की अन्यान्य पद्धतियों से कही श्रेष्ठ है; इसे जानकर कितने ही मनुष्य कृतार्थ हो चुके हैं। अतः आशा है कि जो इस चौदहवें अध्याय को आत्मसात् कर लेगा, वह परम संसिद्धि को प्राप्त हो जायगा।

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः।
सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च।।२।।

इदम्=इस; **ज्ञानम्**=ज्ञान की; **उपाश्रित्य**=शरण लेकर; **मम**=मेरे; **साधर्म्यम्**=स्वभाव को; **आगताः**=प्राप्त हुए; **सर्गे अपि**=सृष्टि के आदि में भी; **न उपजायन्ते**=उत्पन्न नहीं होते; **प्रलये**=प्रलय होने पर भी; **न व्यथन्ति**=व्यथित नहीं होते; **च**=तथा।

अनुवाद

इस ज्ञान के आश्रित पुरुष मेरी दिव्य प्रकृति को प्राप्त हो जाते हैं। जो इस प्रकार निष्ठ हैं, वे सृष्टिकाल में जन्म नहीं लेते और न प्रलय के समय ही व्याकुल होते हैं।।२।।

तात्पर्य

जिसे पूर्ण ज्ञान हो जाता है, वह पुरुष चिद्गुणों में श्रीभगवान् की समानता प्राप्त कर लेता है और परिणाम में जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्त हो जाता है। परन्तु उसके जीवस्वरूप का नाश नहीं होता। वैदिक शास्त्रों से ज्ञात होता है कि वैकुण्ठ-जगत् में प्रविष्ट जीवन्मुक्त महापुरुष भी प्रेममयी भगवत्सेवा के परायण हुए नित्य-निरन्तर भगवच्चरणारविन्द के दर्शनों के लिए उत्कण्ठित रहते हैं। अतएव मुक्तावस्था में भी भक्तों के निज स्वरूप का नाश नहीं होता।

प्राकृत-जगत् में सामान्यतः जो भी ज्ञान होता है, वह सब माया के गुणों द्वारा दूषित है। जो ज्ञान इस प्रकार गुणों द्वारा दूषित नहीं है, वही परम ज्ञान है। उस परम ज्ञान से युक्त होते ही श्रीभगवान् से समकक्षता हो जाती है। जिन्हें वैकुण्ठ-जगत् का कोई ज्ञान नहीं है, वे ही यह धारणा रखते हैं कि पार्थिक देहाकार की प्राकृत क्रियाओं से छूटने पर जीव का आत्मस्वरूप सविशेषता से रहित निराकार हो जाता है। वास्तव में प्राकृत-जगत् की भाँति वैकुण्ठ-जगत् भी सविशेष है। जो यह नहीं जानते, वे समझते